सितार वाद्य के विकास में विभिन्न कलाकारों और घरानों का योगदान, एक ऐतिहासिक अवलोकन

डॉ० रुचिमिता पाण्डे
एसोसिऐट प्रोफेसर, संगीत विभाग
डी०जी० पी०जी० कॉलेज, कानपुर
ईमेलः ruchimita.pande@gmail.com

Reference to this paper should be made as follows:

डॉ० रुचिमिता पाण्डे

सितार वाद्य के विकास में विभिन्न कलाकारों और घरानों का योगदान, एक ऐतिहासिक अवलोकन

Artistic Narration 2021, Vol. XII, No. 2, Article No. 24 pp. 145-154

https://anubooks.com/artistic-narration-no-xii-no-2-july-dec.-2021/

सारांश

आधुनिक समय में सितार हिन्दुस्तानी संगीत का एक सबसे अधिक प्रचलित लोकप्रिय वाद्य है। वाद्य का आकार तथा उसका स्वर कई सालों के अथक प्रयासों व कलाकारों तथा कारीगरों की मेहनत का प्रतिफल है। वीणा और सितार के शारीरिक बनावट व बजाने की तकनीक में अधिक अन्तर न होते हुए भी सितार को बजाना और कहीं ले जाना अधिक सरल है। बीसवीं शताब्दी को सितार के विकास का स्वर्णिम समय कहा जा सकता है। सितार को शीर्ष स्थान पर पहुँचाने में पं0 रविशंकर, उस्ताद विलायत खाँ, पं0 निखिल बनर्जी, पं0 उमाशंकर मिश्र, उस्ताद अब्दुल हलीफ जाफर खाँ, उस्ताद रईस खाँ आदि अनेक महान संगीतज्ञ हैं जिनका योगदान अतुलनीय है और कभी भुलाया नही जा सकता।

मुख्य शब्द

वीणा, त्रितंत्री, जन्त्र, सहवार, मसीतखानी, दिल्ली बाज, रज़ाखानी, लखनऊ बाज, रूद्रवीणा, कच्छपी वीणा, चित्रा वीणा, गतकारी, फिरोजखानी, बाज, सुरबीन, सुरबहार, बीनकार, ख्याल अंग, ज़ाफरखानी बाज, लड़ंत बाज, ठौंकझाला, चपका अंग, सुरसिंगार, दण्डमात्रिक पद्धति, रूद्रबीन, खण्डहारी वाणी, गौहार वाणी।

डॉ० रुचमिता पाण्डे

प्रस्तावना

सितार के जन्म के विषय में अनेक भ्रान्तियाँ व संदेह है। समस्या का प्रारम्भ वहाँ से होता है जब हम सितार की उत्पत्ति का श्रेय 13वीं शताब्दी में अलाउद्दीन खिलजी के दरबारी कवि अमीर खुसरों को देते हैं। वैदिक काल से ही हमारे भारत में अनेक वीणाओं का प्रचलन था। और यह माना जा सकता है कि अमीर खुसरो ने त्रितंत्री वीणा को आधार मानकर जिसे लोक में जन्त्र नाम से भी जाना जाता था सितार वाद्य की संरचना की जिसमें प्रारम्भ में तीन तारों का प्रयोग होता था और सह तार से जाना जाता था। फारसी भाषा में सह का अर्थ तीन होता है। कालान्तर में इसमें परिवर्तन होते रहे और तीन के स्थान पर सात तारों का प्रयोग होने लगा और सितार नाम से विख्यात हुआ। यह परिवर्तन 18वीं शताब्दी के लगभग देखने को मिलता है।

प्रारम्भ में सितार वाद्य की वादन तकनीक और बंदिशें ध्रुपद अंग के आलाप और रुद्र बीन से प्रेरित थीं। तत्पश्चात् ख्याल और तराने का प्रभाव भी सितार वादन का मुख्य अंग बना। सितार बाज़ मुख्य रूप से विलम्बित आलाप और स्वरों के विभिन्न बोलों पर आधारित था। सितार की बनावट व रूप में परिवर्तन भी शनैः–शनैः कलाकारों के प्रयासों से देखने को मिलता है। 19वीं शताब्दी के अंत तक सितार का तुम्बा कद्दू द्वारा बनाया जाने लगा।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही सितार में 7 मुख्य तारों के साथ 13 तरब के तारों का प्रयोग प्रारम्भ हुआ जिन्हें कलाकार अपने द्वारा प्रदर्शित राग के अनुसार स्वर में मिलाकर प्रयोग करते हैं। अचल सितार में 24 परदे और चल ठाठ के सितार में 17 परदों का प्रयोग होने लगा।

निश्चित रूप से सितार के विकासक्रम में अनेक पड़ाव आये जिसमें मुगलों का प्रभाव स्वाभाविक रूप से परिलक्षित होता है और भारतीय संगीत, साहित्य और सामाजिक रीति–रिवाजों का प्रभाव भी तुर्की, फारसी और एशिया की अन्य संस्कृतियों पर पड़ा। पं0 ओकारनाथ ठाकुर ने सितार की उत्पत्ति सप्ततंत्री वीणा से बतायी है। श्री उमेश जोशी ने अपनी पुस्तक भारतीय संगीत के इतिहास में सितार का आविष्कार समुद्रगुप्त के काल में वर्णित किया है।

सितारवाद्य के प्रायोगिक प्रदर्शन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

सर्वप्रथम सितार का प्रायोगिक प्रदर्शन 18वीं शताब्दी में दिल्ली के मसीत खाँ ने किया, जिन्होंने सितार के एक महत्वपूर्ण बाज जिसे मसीतखानी बाज या दिल्ली बाज कहते हैं, का आविष्कार किया।

रजा खाँ भी एक अन्य महत्वपूर्ण नाम है जिन्होंने सितार के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। रजा खाँ तानसेन 8 के वंशज थे जिनका समय 1800 से 1850 के मध्य का है। इन्होंने रज़ाखानी गत का निर्माण किया, जिसे मध्य या द्रुत लय में बजाया जाता है। यह बाज लखनऊ बाज भी कहलाया।

आचार्य कैलाशचन्द्र बृहस्पति ने खसुरो खान को सितार का आविष्कारक माना है। 19वीं शताब्दी में पूनम ज्ञान समाज 1884 में श्री नाटेकर ने अपना पेपर प्रस्तुत किया जिसमें उन्होंने बीन या रुद्रवीणा जो अकबर के समय भी उपलब्ध थी को सितार की उत्पत्ति का आधार माना।

संगीत रत्नाकर में त्रितंत्री वीणा का उल्लेख है, यंत्र क्षेत्र दीपिका और यंत्र कोष में (1875) में सौरेन्द्र मोहन टैगोर के अनुसार अमीर खुसरो ने त्रितंत्री और कच्छपी वीणा को सितार नाम दिया। लालमणि मिश्रा ने भारतीय संगीत वाद्य में त्रितंत्री और जंत्र नामक वाद्य को सितार का प्रारम्भिक रूप माना है। नाट्यशास्त्र में भरत ने चित्रा वीणा का वर्णन किया है जिसे स्वामी प्रजनानंद ने अपनी पुस्तक Historical Development of Indian Music में सितार का जन्मदाता माना है।

सितार के प्रकार का वाद्य दूसरी से छठी शताब्दी में मंदिरों में दिखाई देते हैं जिसे विद्वानों ने सात तारों वाली चित्रा वीणा कहा है। भरत ने चित्रा वीणा को अंग वाद्य की श्रेणी में रखा है।

Allyn Miner के अनुसार 12वीं से 17वीं शताब्दी की मुगल चित्रकला में सहतार या तम्बूर को नाश्पाती के आकार का तुम्बा, लम्बी डॉड, जिस पर परदे बँधे हैं और जो लकड़ी का है, वायलिन के समान पतला ब्रिज है और दायें हाथ में मिजराब के द्वारा बजाया जाता है के रूप में अंकित किया है। आजकल ईरान में सहतार का यही रूप प्रचलित है। कश्मीरी सहतार का भी यही रूप है बस उसमें तीन के स्थान पर सात तारों का प्रयोग होता है।

मोहम्मद शाह रंगीले के शासन काल की पुस्तक मुरक्का–ए–दिल्ली (1739–40) में दरगाह कुली खाँ ने संगीतकार नयामत खाँ, जिन्हें सदारंग के नाम से जानते हैं के बारे में लिखा है कि उन्हें सभी वाद्यों पर एकाधिकार प्राप्त था और उनके भतीजे अदारंग सितार के सिद्धहस्त कलाकार थे। उन्होंने अनेक स्वरलिपियों की रचना कर हर वाद्य पर बड़े अधिकार से प्रस्तुत किया। नयामत खाँ के ही दूसरे भतीजे फिरोज खाँ ने नये प्रकार की गतकारी की रचना की जिसे फिरोजखानी गत कहते हैं। इसी पुस्तक में बकीर तम्बदर्ची का नाम है जो प्रसिद्ध तम्बूरा वादक थे।

संगीत पारिजात में अहोबल ने दो तम्बूरों का वर्णन किया है जो सारिका युक्त निबद्ध तम्बूरा और बिना सारिका वाला अनिबद्ध तम्बूरा के रूप में था।

मोहम्मद करम इमाम (1854) ने मदन–उल–मौसिकी में अनेक सितार वादकों का उल्लेख किया है और जयपुर सेनियों द्वारा सितार के विकास में योगदान का उल्लेख भी किया है। ध्रुपद अंग की आलापचारी के लिए सेनियो ने एक नये वाद्य का भी आविष्कार किया जिसे सुरबीन कहते हैं जो सितार और रुद्रवीणा का मिश्रण है। इसी समय लखनऊ में सितार की तरह का वाद्य सुरबहार सामने आया। बीन सितार का भी वर्णन है जिसमें तीन तुम्बे और तरब के तार भी लगे थे।

इन वाद्यों के उदय होने से संगीतज्ञ पहले सुरबहार पर अलापचारी करते थे तत्पश्चात् सितार पर गत और तोड़ा बजाते थे। जयपुर सेनियों में सितार की आवाज बढ़ाने के लिए दो तुम्बों का प्रयोग होता था। धीरे–धीरे सुरबहार की सभी तकनीकों का प्रयोग सितार पर भी होने लगा।

सितार के विकास में विभिन्न घरानों का योगदान

सितार की विकास प्रक्रिया में हजारों कलाकारों तथा कारीगरों का योगदान रहा। जिसमें जयपुर के सेनिया घराने के नवाब हुसैन दिल्ली, बाबू ईश्वरी प्रसाद इलाहाबाद, पन्ना लाल बाजपेयी बनारस, बरकत अली फर्रूखाबाद, कुतुब अली बरेली, नाबेदार दे रेदर पंजाब, गुलाम मोहम्मद बाँदा, मसीतखान, रहीम सेन, अमृत सेन, दुलहे खान आदि का प्रमुख योगदान रहा।

सितार बाज को ऊँचाइयों पर ले जाने का श्रेय वैसे तो बहुत कलाकारों को है किन्तु दो कलाकार ऐसे हैं जिनमें पहले पं0 रविशंकर, जो उस्ताद अलाउद्दीन खाँ के शिष्य हैं तथा उस्ताद विलायत खाँ, जो इमदाद खाँ के घराने के सुमधुर सितारवादक हैं, को प्राप्त है।

20वीं शताब्दी के मुख्य कलाकार जिन्होंने सितार के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया उनमें सर्वप्रमुख निखिल बनर्जी है। उन्होंने कोलकाता के प्रमुख कारीगर हीरेन राय के सहयोग से सितार में अनेक परिवर्तन किये। इनके अतिरिक्त उमाशंकर मिश्रा, बलराम पाठक, रईस खाँ, अब्दुल हलीम जाफर खाँ, देवव्रत चौधरी, मनीलाल नाग, इमरत खाँ, कार्तिक कुमार, शमीम अहमद, सतीश चन्द्र आदि अनेक गुणी कलाकार हैं। जया विश्वास, मंजु मेहता, कल्याणी राय, कृश्णा चक्रवर्ती आदि महिला सितार वादिका हैं, जिन्होंने इस क्षेत्र में अपना नाम किया। युवा कलाकारों में शाहिद परवेज़, बुद्धदित्य मुखर्जी, सुजात खान, शुभेन्द्र राय, नीलाद्री कुमार, गौरव मंजुमदार, प्रतीक चौधरी, आदि के नाम प्रसिद्ध हैं।

मैहर घराना

मैहर, बाबा अलाउद्दीन खाँ का साधना का मुख्य केन्द्र था जहाँ से उन्होंने संगीत की शिक्षा का प्रसार प्रारम्भ किया। उनकी मृत्यु के बाद उनके शिष्य, पं0 रविशंकर पुत्री अन्नपूर्णा देवी, पुत्र अली अकबर खाँ और पं0 निखिल बनर्जी के द्वारा उनकी वादन तकनीक के आधार पर मैहर घराने का नामकरण हुआ। अलाउद्दीन खाँ साहब की शिक्षा–दीक्षा उस्ताद वजीर खाँ के सानिध्य में हुई जो रामपुर के बीनकार घराने के प्रतिनिधि कलाकार थे। बाबा अलाउद्दीन ने उनकी तालीम के आधार पर अर्जित ज्ञान के द्वारा अपनी एक नवीन शैली विकसित की जिसके अन्तर्गत आलाप, जोड़ आलाप (ध्रुपद अंग) विलम्बित गत (ख्याल अंग), सभी तालों में गत, मध्य, द्रुत अतिद्रुत गत झाला इस प्रकार विलम्बित से प्रारम्भ कर द्रुत लय में समाप्त करने की एक प्रक्रिया का चलन प्रारम्भ किया। राग वादन के पश्चात् लोक धुन के वादन द्वारा समाप्ति करना। इसी परम्परा का निर्वहन उनके शिष्य पं0 रविशंकर, पं0 निखिल बनर्जी ने भी किया। आज इसी परम्परा का अधिकतर सितार वादक अनुसरण कर रहे हैं। उनके वादन की शैलीगत विशेषताओं में, आलाप, जोड़ आलाप, लड़ी, लाग–लपेट, झाला, ठोंक झाला, तारपरन, विलम्बित गत, मध्यगत, द्रुतगत, झाला, ठुमरी, धुन का समावेश है। बाबा अलाउद्दीन खाँ ने विलम्बित और रज़ाखानी गत की अपनी शैली विकसित की। उन्होंने सम से प्रारम्भ होने वाली जमजमा गतों की रचना की। तीन ताल के अतिरिक्त अन्य तालों में भी गतों की रचना की जैसे– रूपक, झपताल, पंचम सवारी, चारताल की सवारी आदि।

इस घराने के प्रतिनिधि कलाकारों में पं0 रविशंकर का नाम प्रमुखता से लिया जाता है जिन्होंने कर्नाटक संगीत पद्धति के अनेक रागों को जैसे कीरवानी, शिमेन्द्र मध्यम चारूकेशी, वाचस्पति, आरभी, हेमावती को हिन्दुस्तानी पद्धति में शामिल किया। इन्होंने सितार में नाडू मलिक की सहायता से अनेक परिवर्तन किये। आज जिस रूप में सितार हमें दिखता है यह उन्हीं के प्रयासों का परिणाम है। आज से 100 वर्ष पूर्व के सितार में और आज के सितार में एक लम्बी यात्रा के बाद अपना यह वर्तमान रूप पाया है।

विलायतखानी या इटावा घराना

वादन तकनीक की भिन्नता ही किसी नयी शैली को जन्म देती है। इस शैलीगत भिन्नता का उदय ध्रुपद अंग की वादन शैली से ख्याल अंग की शैली तक आता है। इसी वादन शैली की भिन्नता ने सितार वादन के घरानों को जन्म दिया है।

विलायत खानी शैली या विलायत खानी बाज के जन्मदाता उस्ताद इमदाद खाँ और इनायत खाँ हैं। बाद में उस्ताद विलायत खाँ ने इस शैली को विकसित किया और नये आयाम प्रदान किये। उस्ताद इमदाद खाँ ने अपने गुरु शाहबाद खाँ का अनुसरण किया। इस घराने की खास विशेषता दाये हाथ का रियाज है जिसमें उस्ताद इमदाद खाँ ने दायें हाथ के विभिन्न बोलों और द्रुत लय में वादन पर महारथ हासिल की। उस्ताद शाहबाद खाँ और इमदाद खाँ ने विलम्बित लय में मसीतखानी गत, द्रुतलय में रजाखानी गत, तबले के बोलों पर आधारित तोड़ों की लयकारी, झाला, दुगुन झाला, आलाप जिसमें ध्रुपद अंग से मींड और दाये हाथें से बोलों का स्पष्ट प्रदर्शन आदि शैलीगत विशेषताओं को विकसित किया।

उस्ताद विलायत खाँ ने अपने घराने की विशेषताओं को आत्मसात करने के साथ–'साथ सितार में तिहाईयों के वादन का प्रारम्भ किया। उन्होंने बाल्यकाल में ही, अपने सितार वादन से अपनी प्रतिभा का परिचय दे दिया था। प्रारम्भ में आप अपने पिता की शैली का अनुसरण करते रहे बाद में उनकी गायन की शिक्षा उनके नाना उस्ताद बंदे हसन के सान्निध्य में हुई और सितार वादन में गायिकी अंग का अवतरण हुआ। उन्होंने बायें हाथ की वादन तकनीक जिसमें मींड द्वारा वादन और स्वर की ध्वनि को बिना खंडित किये दीर्घ समय तक ध्वनि को स्थायित्व प्रदान किया। कहा जाता है कि उनका सितार बिना कंठ के गाने में सक्षम है।

निश्चित रूप से सितार वादन में गायिकी अंग, एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। विलायत खाँ साहब, भाई इमरत खाँ, बेटे सुजात खाँ, निशाद खाँ, इरशद खाँ इसी परम्परा के अनुयायी हैं। इनके अतिरिक्त उस्ताद वाहिद खाँ जो इनायत खाँ के भाई थे और सुरबहार वादक थे के पोते शाहिद परवेज़ भी इस घराने के प्रतिनिधि कलाकारों में से एक हैं।

उस्ताद विलायत खाँ ने सितार के स्थूल रूप में परिवर्तन किये जिसमें सर्वप्रथम, मोटी और मजबूत तबली, जिसके द्वारा मुर्की, गमक और मींड लेने में सहायता मिली।

मजबूत ब्रिज और गोल जवारी, डाँड और तुम्बे को लोहे की कीलों द्वारा जोड़ना, तारगहन

का मोटा होना ताकि तारों को मींड हेतु मजबूती से खींचा जा सके, जर्मन चाँदी से परदों का निर्माण, तारों की संख्या 6 है जिसमें जोड़ी का एक तार हटा दिया गया। खरज पंचम के तार को स्टील का कर दिया। सितार को सी–शार्प में मिलाना ये सब परिवर्तन सितार वादन के क्षेत्र में क्रान्तिकारी माने जाते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि उस्ताद विलायत खाँ ने सितार को उच्च श्रेणी का स्थान प्रदान करने में अत्यन्त ही महत्वपूर्ण योगदान दिया।

इन्दौर घराना

इंदौर घराने में सितार वादन की परम्परा का विकास 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ। इस घराने के कलाकारों में उस्ताद वाहिद खाँ, उनके समकक्ष उस्ताद बंदे अली खाँ, हलीम जाफर खाँ के दादा मुरव्वत खाँ, मुसद खाँ (बीनकार), अब्दुल लतीफ खाँ (बीनकार), मुहम्मद खाँ देसाई फरीदी, उस्ताद रज़ब अली खाँ (गायक), बाबू खाँ बीनकार), मुश्रफ खाँ (सितारिये), ओसमान खान (बीन), गुलाम रसूल (सितार), रहमत खाँ (सितार वादक जो बाद में धारवाड़ में बस गये), नज़ीर खाँ, मोहम्मद खाँ (बीनकार और सितारिये), जाफर खाँ, अमानत खाँ (गायक), कृष्णराव, रघुनाथ राव, अष्ठेवाले, कृष्णराव कोल्हापुरे, देवास्कर भाईया (गायक), सज्ज़ाद हुसैन खाँ (जिनका नाम भातखण्डे जी की क्रमिक पुस्तक मलिका के भाग–IV में अंकित है), उस्ताद आमीर खाँ आदि के नाम इस घराने की समृद्धिशाली परम्परा से सम्बद्ध हैं। इन सभी कलाकारों ने गायिकी और सितार वादन को नये शिखर तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उस्ताद हलीम जाफर खाँ इसी परम्परा के अनुयायी हैं। इस घराने का क्षेत्र इन्दौर, देवास, ज्वारा, जबलपुर (मध्य प्रदेश) है।

जाफरखानी बाज में 16 मात्रा की गत को 12 विभिन्न प्रकार की तकनीकों द्वारा अलंकरित करके बजाने की खास विशेशता है। इस खास तकनीक को विकसित करने का मुख्य कारण मसीतखानी गत के निश्चित बोलों की गत को नवीनता प्रदान करना है और राग की विशेषताओं को प्रदर्शित करना है। मिजराब के विभिन्न बोलों को गत की सुन्दरता बढ़ाने के लिए मींड, मुर्की, जमजमा, उचाट, खटका आदि द्वारा अलंकरित कर एक–एक मात्रा को सुशोभित किया गया और बारह विभिन्न प्रकार की तकनीकों का प्रयोग किया गया। कुछ राग जैसे सिन्धुभैरवी, पहाड़ी, मध्यमी, मध्यमाद सारंग आदि रागों में इन तकनीकों का विशेष प्रयोग परिलक्षित होता है। ये बारह तकनीक इस प्रकार हैं–

1. एक सप्तक से दूसरे सप्तक तक स्वर की प्रतिध्विनि।
2. झाला का प्रदर्शन अंत में करना अर्थात् आलाप, जोड़, विलम्बित गत, द्रुतगत और झाला इस क्रम से।
3. जोड़ आलाप में दोनों तारों में वादन
4. चपका अंग (उल्टी मींड)
5. लड़ंत बाज

6. थाट–दुगुन बाज
7. उचाट लड़ी
8. गत भरन
9. झार भरन
10. गत–अंग चाल
11. ठोंक झाला
12. दारदा, द्रा, रदा, घसीट, कण, मींड आदि।

सेनिया घराना

सेनिया घराना वह मुख्य घराना है जिससे अन्य सभी घरानों का उदय हुआ है। इस घराने का सम्बन्ध तानसेन से है और तानसेन के परिवार और शिष्यों ने इस घराने की परम्परा को जीवित रखने में पूर्ण योगदान प्रदान किया है।

सेनिया घराने के प्रतिनिधि कलाकारों में सूरतसेन, रहीमसेन, अमृत सेन, निहाल सेन, आमीर खाँ, बरकत उल्ला, इमदाद खाँ आदि की लम्बी लिस्ट है। सेनिया सितार की परम्परा का उदय तानसेन के छठे पीढ़ी के वंशज मसीत सेन को जाता है जिन्होंने सितार के मुख्य बाज मसीतखानी गत की भी रचना की। वाद्य की परम्परा का विकास करने का श्रेय तानसेन के दामाद मिश्री सिंह को जाता है। सेनिया परम्परा में सर्वप्रथम 16 परदों का प्रयोग किया जाता है। बाद में धैवत का परदा भी जोड़ दिया गया ताकि सितार पर गद्दा तकनीक का प्रयोग किया जा सके।

जयपुर सेनिया के उस्ताद बरकत उल्ला का नाम सदैव आदरणीय और स्मरणीय है। अपने वाद्य पर उनका पूर्ण अधिकार था। जयपुर सेनिया घराने के सितार वादक अत्यंत गर्व से अपना सम्बन्ध मसीत सेन से स्थापित करते हैं और तानसेन परम्परा के वादक के रूप में अपने को सुशोभित करते हैं।

उस्ताद मुश्ताक अली खाँ इस घराने के प्रतिनिधि कलाकार हैं उन्होंने इस घराने की परम्परा को पल्लवित और विकसित किया। खाँ साहब ने रज़ाखाली गत की 400 बंदिशों का निर्माण किया। उनकी वादन शैली में ध्रुपद के बीन अंग से प्रभावित थी जिसे सुरबहार पर बजाते थे। उन्होंने परम्परा के विपरीत सुरबहार वादन बिना तबला संगत के किया। उनका कहना था कि सुरबहार बीन परम्परा पर आधारित है और बीन के साथ तबला नहीं बजता। उनका तीन मिजराबों से वादन अब इतिहास ही बन चुकी है।

विष्णुपुर घराना

विष्णुपुर पश्चिम बंगाल के बंगुकुरा जिला का एक छोटा शहर है जो भगवान विष्णु का स्थान माना जाता है। इस स्थान की समृद्ध संस्कृति संगीत के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जब सेनिया घराने की प्रसिद्धि अपने चरम स्थान पर थी तब इस घराने के सुप्रसिद्ध ध्रुपद गायक बहादुर खाँ, जो तानसेन के वंशज थे विष्णुपुर आ गये और इस घराने की नींव डाली। उन्हें महाराजा रघुनाथ सिंह देव द्वितीय ने दरबारी गायक के रूप में नियुक्त कर लिया। राजा की कृपा दृष्टि के कारण बहादुर खाँ से संगीत सीखने वाले सभी लोगों की आर्थिक मदद की गयी और उनके शिष्यों की असंख्य संख्या हो गयी। उनके एक शिष्य गदाधर चक्रवर्ती एक योग्य गायक और वीणा रबाब और सुरसिंगार वादक थे। उन्हीं के शिष्यों में रामशंकर भट्टाचार्य और जादू भट्ट का नाम भी प्रसिद्ध संगीतज्ञों में आता है। श्री अनंतलाल बनर्जी की शिक्षा–दीक्षा रामशंकर जी के सान्निध्य में हुई और अनंतलाल के बेटे इस घराने के मूर्धन्य कलाकारों में से एक हैं।

इस घराने की परम्परा के कलाकारों में श्री गिरिजा शंकर चक्रवर्ती, जोगेन्द्रनाथ बनर्जी वीरेन्द्र नाथ भट्टाचार्य, संगीताचार्य तरपड़ जैमिनी गाँगुली, सलीम बनर्जी आदि के नाम प्रसिद्ध हैं। महाकवि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर की ध्रुपद गायन की शिक्षा इसी घराने के राधिका प्रसाद गोस्वामी और जादू भट्ट द्वारा हुई।

गदाधर चक्रवर्ती के पुत्र श्री नीलमाधव चक्रवर्ती ने राजा जोतीन्द्र मोहन और उस्ताद अलाउद्दीन खाँ (मैहर घराने) को भी सुरबहार की शिक्षा दी। महाराज बुर्धवान के दरबारी गायक श्री गोपेश्वर बनर्जी भी इस घराने के प्रतिनिधि कलाकार हैं। संगीत शास्त्र की अनेक पुस्तकें, संगीत चन्द्रिका, गीत दर्पण, गीत प्रवेशिका, संगीत लहरी आदि इन्होंने लिखी।

इस घराने के अन्य संगीतज्ञों में श्री के0सी0 डे, मन्ना डे, क्षेत्रमोहन गोस्वामी का नाम है। क्षेत्र मोहन गोस्वामी ने बंगाल में स्वरलिपि के लिए दण्डमात्रिक पद्धति की संरचना की। इस घराने के अन्य प्रसिद्ध संगीतज्ञों में श्री सत्यकिंकर बनर्जी, श्री गोकुल नाग, श्री मनीलाल नाग, श्री आमिया राजन बनर्जी, रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय के प्रोफेसर) श्री निहार रंजन (प्रो0 रवीन्द्र भारती), श्री मनोरंजन बनर्जी आदि इस परम्परा का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

जयपुर बीनकार/सितार घराना

जयपुर और अलवर का राजस्थान बीनकार घराना प्राचीनतम घरानों में से एक है। इस घराने में सर्वप्रथम नायक बैजू (बक्शू) का नाम आता है जो देवी भवानी के उपासक थे और रुद्रबीन वादक थे। यह 14वीं शताब्दी में जब अलाउद्दीन खिलजी का समय था तब सभी संगीतज्ञ राजस्थान छोड़कर गोलकुण्डा में जाकर बस गये। जहाँ उन्हें वहाँ के शासकों की शरण मिली और कर्नाटक संगीत का प्रभाव उनके संगीत पर पड़ा।

17वीं शताब्दी में ये सभी वापस राजस्थान आ गये और जयपुर, उदयपुर और अलवर में बस गये। रजबअली इस घराने के प्रतिश्ठित कलाकार हैं जो सितारवादक रहीम सेन के समकक्ष और उनके पुत्र अमृत सेन से वरिष्ठ थे। सेनिया घराने के बीनकार और सितारिये जयपुर में बस गये और दोनों घरानों का आदान–प्रदान हुआ जिसके फलस्वरूप रूद्र बीन की

खण्डहारी वाणी और गौहार वाणी (ध्रुपद) का उदय हुआ। जयपुर बीनकार और सेनिया घराने ने सितार बाज को विकसित कर उसे बहुत ऊँचाई तक पहुँचाया जिसमें राग आलाप और गतकारी की विशेश तकनीक का प्रारम्भ किया।

इस घराने के अन्य कलाकारों में जमालुद्दीन खाँ, अब्बास खाँ, श्री सत्यकिंकर बनर्जी, विष्णुपुर घराना, श्री सत्यकिंकर बनर्जी ने 'विष्णुपुर घराने के इतिहास' में लिखा है, रुद्रबीन वाद्य के लुप्त होने का कारण यदि यह है कि इस पर मात्र राग के स्वरों का विस्तार होता था तो यह सत्य नहीं है क्योंकि मैंने वाराणसी की संगीत सभा 1919 में बड़ौदा रियासत के राज्य बीनकार जमालुद्दीन खाँ का बीन पर देसी तोड़ी दोनों धैवत के साथ सुना है। दर्षक और श्रोता उनके वादन से विस्मित हो गये थे। राग के स्वर माधुर्य का ऐसा प्रदर्शन हुआ कि उनकी प्रस्तुति आज भी मेरे कानों में गूँजती है। उस्ताद आबीद हुसैन बीनकार और ध्रुपदिये थे उन्होंने अनेक बंदिशों का निर्माण किया जिसमें ध्रुपद, धमार, ख्याल, ठुमरी, सितार पर बजाने हेतु राजस्थानी धुनों आदि की बंदिशें आती हैं।

पचास के दशक के बाद बीनकार समाप्त हो गऐ क्योंकि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उन्हें सरकार द्वारा कोई संरक्षण और प्रोत्साहन प्राप्त नहीं हुआ। एक मात्र रुद्र वीणा वादक उस्ताद असद अली खाँ ने इस परम्परा को जीवित रखने में अपना योगदान दिया। इस घराने के सितार वादकों में शमसुद्दीन खाँ, हैदर बक्श, कल्लन खाँ हैं। शमसुद्दीन सुरबहार के सिद्धहस्त कलाकार थे और जयपुर के 'दो हाथ का बाज' के जन्मदाता भी थे ये पहले भारतीय संगीतज्ञ थे जिन्होंने 1894 में यूरोप की यात्रा में सुरबहार वादन किया।

निष्कर्ष

सितार वाद्य के विकास में कलाकारों और घरानों ने अपना महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया। इस बात में कोई अतिश्योक्ति नहीं है। घराना परम्परा हिन्दुस्तानी संगीत को चिर काल तक संरक्षित करने और निरन्तर बनाये रखने में सर्वथा सफल रहा। संगीत के संदर्भ में एक विशेष या विशिष्ट सम्प्रदाय या एक शैली का अनुसरण करते हुए गुरु परम्परा की तीन पीढ़ियों तक संगीत को अक्षुण्ण बनाये रखना एक योग्य गुरु के मार्ग दर्शन में ही सम्भव है।

सितार के विभिन्न घरानों का उदय गुरुओं की शैलीगत भिन्नताओं के कारण हुआ परन्तु आधुनिक समय के सितार वादकों ने भले ही वे जिस परम्परा के अनुयायी हों, सभी वादकों की शैलीगत विशेषताओं को अपने वादन में समाहित कर लिया है। आज का वादक खुले ह्रदय से सभी संगीतज्ञों की विशेषताओं को आत्मसात करने की इच्छा रखता है। यही सितार वाद्य की ख्याति और प्रगतिशील होने का परिचायक है। इलैक्ट्रॉनिक वाद्य यंत्रों के इस युग में सितार वाद्य अपना शीर्ष स्थान बनाये हुए है। वह आधुनिक प्रगतिशील सितार वादकों के ही कारण है। पं0 नीलाद्री कुमार ने सितार का इलैक्ट्रानिक प्रतिरूप बनाया जिसे जिटार नाम दिया। इसी प्रकार के नित नये प्रयोग चाहे वादन के क्षेत्र में हो या बनावट में होते ही रहते हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. Allyn Miner- Sitar and Sarod in the 18th and 19th Centuries.
2. Dr. Suneera Kasliwal- Classical Instruments
3. Swami Prajananda- Historical Development of Indian Music
4. B.C. Deva - Musical Instruments
5. James Sadler Hamilton- Sitar music in Calcutta
6. लालमणि मिश्रा– भारतीय संगीत वाद्य